ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2019; 5(8): 406-409
www.allresearchjournal.com
Received: 26-06-2019
Accepted: 30-07-2019

डॉ. देवी प्रसाद
सह आचार्य, हिन्दी विभाग, एस. एन.के.पी. राजकीय महाविद्यालय, नीमकाथाना, सीकर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. देवी प्रसाद
सह आचार्य, हिन्दी विभाग, एस. एन.के.पी. राजकीय महाविद्यालय, नीमकाथाना, सीकर, राजस्थान, भारत

हिन्दी ग़ज़ल में दरकते रिश्ते

डॉ. देवी प्रसाद

सारांश
हिन्दी ग़ज़ल का अपना रूप, संवेदना और शिल्प है। यद्यपि हिन्दी ग़ज़ल पर उर्दू ग़ज़ल का पूरा प्रभाव है, परन्तु हिन्दी में आकर इसका विषय बदल गया है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में आम आदमी के दुःख–दर्द को पूर्ण संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है। इन ग़ज़लकारों की कोशिश है कि मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाया जाए। यदि मनुष्य में मनुष्यता नहीं है, तो वह हाड़–मांस के पिण्ड के अलावा कुछ नहीं है। हिन्दी ग़ज़ल समाज में व्याप्त बुराइयों, विद्रूपताओं, समस्याओं का चित्रण कर मानव को संवेदनशील बनाकर एक सुन्दर, समतावादी समाज के निर्माण का काम कर रही है और यही साहित्य का प्रमुख उद्देश्य भी है।

कूटशब्दः विसंगति, सहृय, लोकग्राह्यता, रचना–धर्मिता, दरमियाँ, जीवन–मूल्य, वेदना, पीड़ा, स्वार्थ, शोषण, भय, गुण्डागर्दी, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, शहरीकरण समतावादी समाज, ठौर–ठिकाना, इनायत।

प्रस्तावना
कवि भावुक, संवेदनशील और सहृय होता है। किसी का दुःख या कोई विसंगति अन्य किसी व्यक्ति को भले ही प्रभावित करे या न करे पर साहित्यकार पर वह गहरा प्रभाव डालती है। साहित्यकार दूसरों के दुःख को अपनी अनुभूति का अंग बना लेता है। मैं समझता हूँ कि कविता दिमाग की कम, मन की ज्यादा होती है। यह बात हिन्दी ग़ज़लकारों पर भी लागू होती है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने ग़ज़लों को प्रेम एवं सौन्दर्य के बजाय व्यक्ति एवं समाज से जोड़ा है।

साहित्य समाज का दर्पण है, इसी कारण सामाजिकता उसका अपरिहार्य गुण है। हिन्दी ग़ज़लें सामाजिक परिवेश के यथार्थ को व्यक्त कर रही है। राजकुमार कृषक के अनुसार, ''समकालीन काव्य परिदृश्य में हिन्दी ग़ज़ल ने जो मुकाम हासिल किया है, वह उसकी सामाजिक लोकग्राह्यता का प्रमाण है।''[1] हिन्दी ग़ज़लकारों ने समाज की समस्याओं, विडम्बनाओं, विंसगतियों, रीति–रिवाजों, परम्पराओं का वास्तविक चित्रण करते हुए सामाजिक यथार्थ को प्रकट किया। समाज का यथार्थ चित्रण इन ग़ज़लकारों की रचनाधर्मिता का मुख्य उद्देश्य रहा है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों ने समाज के बदलते स्वरूप के साथ ही उसके विभिन्न पक्षों, समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। समाज में पुरुष, नारी, परिवार, जीवन–मूल्य, वेदना, पीड़ा, स्वार्थ, शोषण, भय, गुण्डागर्दी, व्यभिचार, भ्रष्टाचार, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, शहरीकरण आदि में तीव्रगति से परिवर्तन हो रहा है। यह परिवर्तन समाज के विकास में सहायक है या बाधक, इन्हीं विषयों को हिन्दी ग़ज़लकार हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं।

हिन्दी ग़ज़लें सामाजिक यथार्थ की सम्पूर्ण जटिलताओं को ईमानदारी से हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। इन ग़ज़लों में व्यक्त सामाजिकता तथा युगीन चेतना उसे नये ढंग से संस्कारित कर रही है, जिससे समाज विकास एवं प्रगति की ओर अग्रसर हो सके। समाज में व्यक्ति एवं परिवार महत्वपूर्ण कड़ी होते हैं, जिन्हें समाज की धुरी कहा जाता है। वर्तमान युग में परिवार का स्वरूप बदलता जा रहा है। संयुक्त परिवार टूटकर एकाकी हो रहे हैं। इन ग़ज़लकारों ने टूटने–बिखरते परिवारों का यथार्थ चित्रण किया है। इसी टूटन की वजह से परिवारों में विखडंन, बिखराव, अकेलापन, अनादर, अनास्था व्याप्त हो गई है। ग़ज़लकार 'गोविन्द गुलशन' ने कहा है कि परिवार टूटने पर कुछ भी शेष नहीं रहता हैः–

> ''वहाँ दिवारें रह जाती हैं केवल
> कहीं पर जब कोई घर टूटता है।''[2]

जैसा कि साहित्य की एक परिभाषा ''सहितस्य भावं साहित्य'' भी है। रचनाकार का उद्देश्य न्यूनताओं को उजागर करके उन्हें दूर करने के लिए प्रेरित करना होता है। ग़ज़लकार आपसी खींचतान और झगड़ों के मध्य आपसी सद्भाव का रास्ता भी तलाशता है। वह जानता है कि हम कितना भी लड़–झगड़ लें, रहना तो इसी जमीन पर और घर में है, तो क्यों न एक ऐसी जगह हो जो बीच की हो। 'इशरत किरतपुरी' कहते हैं:–

''सहन में खींचना अगर दीवार,
आने–जाने का रास्ता रखना।''

जैसे ही संयुक्त परिवार में बिखराव होता है, तो घर में दीवारें बन जाती हैं। ये दीवारें केवल घर को ही नहीं बांटती, दिलों को भी बांट देती हैं। ग़ज़लकार 'मखमूर सइदी' ने टूटते–बिखरते परिवारों की पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया है। इनके अनुसार मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए घर में कितनी ही दीवारें खींच दी हैं। ये दीवारें एक–दूसरे के हृदय में खींची हुई लकीर की तरह हैं, जिससे घर गुम हो गया है:–

''कितनी दीवारें उठी हैं, एक घर के दरमियाँ
घर कहीं गुम हो गया, दीवारों–दर के दरमियाँ''[3]

संयुक्त परिवारों के टूटने के सबसे बड़ा कारण बढ़ती महत्त्कांक्षाएं और स्वार्थ है। परिवार के टूटने पर लोग निजी स्वार्थ में डूब जाते हैं। घर में एक–दूसरे की कोई नहीं सुनता है। रिश्ते स्वार्थ की बलि चढ़ गये हैं। आजकल परिवार का हर सदस्य अपने अलग सपने देख रहा है, जिसमें उसके सपनों की दुनिया है और उसे लगता है कि उस दुनिया को पाने में उसका परिवार बाधक है। बदलते दौर में रिश्तों की अपेक्षा पैसा अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। पैसा कमाने वाले व्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। पूँजीवादी एवं भौतिकवादी युग में परिवार को पालने वाला व्यक्ति कमाने की वस्तु बनकर रह गया है, वह स्वयं में ही कहीं गुम है:–

''मेले में भटके होते तो कोई घर पहुंचा देता
हम घर में भटके हैं कैसे ठौर–ठिकाने आएंगे।''[4]

नैतिकता और इमानदारी बीते दौर के बातें होती जा रही हैं। संयुक्त परिवार बिखरकर जब एकाकी हो जाते हैं, तब जायदाद का बंटवारा होता है। स्वार्थ में डूबे हुए एवं पैसों के लोभी व्यक्ति जायदाद का अधिक से अधिक हिस्सा अपने पास रखने के आंकांक्षी होते हैं। ग़ज़लकार 'विज्ञान व्रत' ने इस स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है:–

''अब इस घर के बंटवारे में
झगड़ा बस तहखाने पर है।
होरी सोच रहा है उसका
नाम यहाँ किस दाने पर है।''[5]

समूह में रहना मानव का स्वभाव हुआ करता था, जो अब बदलता जा रहा है। रिश्तों में आई दरारों ने आपसी स्नेह एवं प्रेमभाव को लगभग समाप्त कर दिया है। परिवार के कुछ सदस्य इस बिखराव के पश्चात् गुमनाम से हो गये हैं, वे घर में एक साथ होते हुए भी साथ में खाना नहीं खाते हैं। एक–दूसरे के साथ अजनबियों जैसा व्यवहार करन लगे हैं। वे अपने मूल अस्तित्व को खोकर साथ रहकर भी साथ नहीं हैं। वे कहीं गुमनाम हैं। ग़ज़लकार 'सविता चढ्ढा' ने इस स्थिति का बयान बहुत ही खूबसूरती से किया है:–

''टूट के ड़ाली से पते गुम कहीं हो जायेंगे।
आज है साथ कल शायद कही खो जायेंगे।''[6]

दिन प्रतिदिन सहनशीलता की कमी होती जा रही है, जिससे आपस में मनमुटाव के चलते परिवारों में झगड़े अधिक होने लगे हैं। वर्तमान युग में बहुत परिवार गृह–कलह के कारण संयुक्त से एकाकी हो गए हैं। सीधे एवं भले लोग भी परिवार के गलत आचरण वाले व्यक्ति के कारण परिवार के विखंडन को आसानी से स्वीकार कर लेते हैं। ग़ज़लकार सुल्तान अहमद का मानना है कि नयी पीढ़ी के लोग एकाकी होकर संयुक्त परिवार को स्वीकार नहीं करते एवं परिवार की एकता को नष्ट कर देते है। सबकी नजरें घर की सम्पत्ति पर होती हैं। इस सम्पत्ति के विभाजन को लेकर उनका व्यवहार लुटैरों जैसा लगता है:–

''सब लुटेरे एक मिलकर हो गये
घर कलह से टूटता–बँटता जा रहा है।''[7]

व्यक्ति अपने अधिकारों को लेकर बहुत सचेत है। उसे अपने अधिकार तो याद हैं, लेकिन जिम्मदारियाँ नहीं। आज का इंसान सबकुछ अपने पास रख लेना चाहता है। इन ग़ज़लकारों के अनुसार यह नयी पीढ़ी सब कुछ अपने अनुसार चाहती है। अपने पूर्वजों की सम्पत्ति एवं निशानियों को वह बरकरार नहीं रखना चाहती है। वह तो आधुनिकता की चकाचौंध के पीछे भागती रहती है। ग़ज़लकार राजेन्द्र तिवारी को नई पीढ़ी पुरखों के नाम को मिटाकर आगे बढते हुए तथा वह स्वयं की पहचान बनाने को आतुर दिखाई देती है:–

''बेताब नयी नस्ल है पहचान को अपनी
पुरखों की निशानी के लिए सोचता है कौन।''[8]

वैसे परिवारों के टूटने का प्रभाव सभी पर पड़ता है, परन्तु इस टूटन एवं बिखराव का सबसे ज्यादा प्रभाव बूढ़े माँ–बाप या बुजुर्गों पर पड़ा है। जब तक वो पैसा कमाते थे, उनको महत्व दिया जाता था, लेकिन शरीर से कृशकाय एवं सेवानिवृत होने के पश्चात् परिवार में उनका अस्तित्व समाप्त प्रायः हो जाता है। बदलते दौर में बूढ़े माता–पिता को नयी पीढ़ी समस्या समझने लगी है, उन्हें सम्मान की जगह तिरस्कार व तानें सुनने को मिलते हैं। ऐसा करते हुए नई पीढ़ी के लोग यह भूल बैठे हैं कि आज जैसा वो अपने माता–पिता के साथ कर रहे हैं, आने वाले समय में उनके बच्चे भी उनके साथ ऐसा ही बर्ताव करेंगे। हमें हमारे बुजुर्गों का ख्याल रखना चाहिए क्योंकि वे हैं तभी ता हम हैं। बुजुर्गों का अनादर करने वालों को भविष्य में परिणाम भुगतने की चेतावनी देते हुए ग़ज़लकार 'कृष्ण कुमार' लिखते हैं:–

''भूल मत तेरी भी औलाद बड़ी होगी कभी,
तू बुजुर्गों को खरी–खोटी सुनाता क्यों है।''[9]

आज का मनुष्य बूढे माँ–बाप को मानसिक ही नहीं, शारीरिक रूप से भी प्रताड़ित एवं अपमानित करता है। डॉ. गोपाल बाबू शर्मा ने बुजुर्गों की स्थिति का हृदय–विदारक चित्रण किया है। वे बुजुर्गों की स्थिति को लेकर चिंतित हैं। इस संबंध में उनकी यह ग़ज़ल दृष्टव्य है:–

''शराफत हो गई झूठी
इनायत हो गई झूठी।
लगे माँ–बाप अब पिटने
शरारत हो गई झूठी।''[10]

शिक्षा तथा रोजगार के लिए परदेश जाने वाले, वहीं पर बस गए। उम्र के ढलान के दौर से गुजर रहे बुजुर्गों को उनके बच्चे संभालते नहीं हैं। वे परदेस से केवल रूपये पैसे भेज देते हैं। वे दूरभाष के माध्यम से सांत्वना प्रकट कर देते हैं, लेकिन बूढे माँ–बाप के पास रहकर उनका ध्यान नहीं रखते। वर्तमान समय में बुजुर्गों की घर में अवहेलना के साथ–साथ उनका अकेलापन भी हिन्दी ग़ज़लकारों ने व्यक्त किया है। 'बेकल उत्साही' के अनुसार, उन्होंने माता–पिता को विस्मृत कर दिया हैः–

''जाके परदेस में माँ–बाप को जो भूल गए
ऐ गरीबी वो तेरी गोद के पाले होंगे।''[11]

मनुष्य स्वभावतः समूह में रहना चाहता है। बुजुर्ग जब घर में अकेले रह जाते हैं तो उन्हें अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता है। उन्हें सबसे ज्यादा पीड़ा इस बात को लेकर होती है कि उनके अपने बच्चे उन्हें छोड़ कर चले गए हैं। अकेले रहने वाले बुजुर्ग पल–पल अपने बच्चों को याद करते हैं। इंसानों के साथ–साथ जानवरों के भी अपने बच्चों के प्रति व्यक्त स्नेह एवं ममत्व भाव को देखकर उन्हें अपनी संतान की याद आ जाती है। ग़ज़लकार 'अनुराग मिश्र' ने अपनी ग़ज़लों में वृद्ध माता–पिता की स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हुए कहा हैः–

''आँगन में एक धूप टुकड़ा
सुनता बूढी माँ का दुखड़ा
बिटवा याद बहुत आता है
दुलराती जब गइया बछड़ा।''[12]

इस अकेलेपन की त्रासदी से बड़े–बूढ़े ही नहीं परिवार के युवा सदस्य भी शिकार हो रहे हैं। एकाकी परिवार में मनुष्य अकेला हो गया है। अकेलेपन को भोगने के कारण वह अजनबीपन, अविश्वास, घुटन आदि से ग्रस्त हो गया है। ग़ज़लकार ज्ञान प्रकाश 'विवेक' ने इसी अकेलेपन की त्रासदी को व्यक्त करते हुए कहा हैं कि आज सुख–सुविधाओं के बावजूद भी मनुष्य अकेला हैः–

''मैं अपने जन्मदिन पे हूँ कमरे में अकेला
टेबल पर बहुत देर से एक केक पड़ा है।''[13]

एकाकी परिवार में मनुष्य जिस अकेलेपन, अजनबीपन, संवादहीनता अविश्वास की त्रासदी से ग्रस्त हो गया है, उसका असर रिश्तों पर भी परिलक्षित होता है। अब घर परिवार के रिश्तों में खटास आ रही है। मानवीय रिश्तों में प्रेम एवं विश्वास की खुशबू मनुष्य की स्वार्थ भावना के आगे गायब हो रही है। पति–पत्नी के रिश्ते भी नाजुक हो गये हैं। रिश्तों का बोझ किसी को भी मंजूर नहीं। ग़ज़लकार 'सूर्यभानु गुप्त' के अनुसार परिवार के सदस्य स्वार्थ से पूरित हैं। मनुष्य के संघर्ष में साथ चलना अब उनकी स्वार्थ भावना के अनुसार है। भगवान राम का वनवास में साथ देने वाले भाई और पत्नी की तरह वर्तमान युग भाई और पत्नी साथ देते दिखाई नहीं देते हैं। आज के युग के राम को जीवन–संघर्ष अकेले ही करना हैः–

''पहली दफा तो संग में, सीता भी थी, लखन भी
अब न कोई होगा, निकले जो राम जंगल।''[14]

वर्तमान युग में रिश्ते–नाते और दोस्ती, मनुष्य की स्वार्थ भावना के आगे बलि चढ़ गये हैं। बदलते हालात रिश्तों पर इस कदर हावी हैं कि मालुम नहीं चलता कि रिश्तों में स्वार्थ है या स्वार्थ के रिश्ते हैं। बिना मतलब के कोई भी किसी से बात करना पंसद नहीं करता। 'गोपाल बाबू शर्मा' की यह ग़ज़ल द्रष्टव्य हैः–

''स्वार्थ के संबंध ही बस रह गए।
अन्यथा अब कौन किसको पूछता।''[15]

आधुनिकता की अंधी दौड़ में इंसान अपनी इंसानियत भूल बैठा है। आज अपने स्वार्थ के चलते आदमी अपने नाते–रिश्तों को भी भूल गया है। यह स्थिति समाज के लिए अच्छी नहीं है। ग़ज़लकार 'मृदुला अरूण' ने रिश्तों को सहेजकर रखने की गुजारिश की है। इनके अनुसार रिश्तों में प्यार, प्रेम, विश्वास, एहसास, अपनापन, समझ होना आवश्यक है। रिश्ते मानवीय भावनाओं के प्रतीक होते है, इसलिए रिश्ते चाहे रक्त के हों या दोस्ती के, उन्हें बचाना चाहिएः–

''आँच देंगे सर्द मौसम में दुशालों की तरह
टूटने मत दीजिये संबंध प्यालों की तरह
हमने वो रिश्ते निभाए हैं जो उलझाते रहे
इम्तहां में आ गए मुश्किल सवालों की तरह।''[16]

आज हर व्यक्ति स्वतंत्रता चाहता है। वह अपने परिवार में भी अपने आपको बंधन में महसूस करता है। उसे अपने जीवन में किसी का भी दखल बरदाश्त नहीं है। वह अकेले जीने में विश्वास रखता है। ग़ज़लकार सुल्तान अहमद ने अपनी ग़ज़लों में अकेलेपन, घुटन, निराशा, हताशा से पीड़ित मनुष्य का वर्णन किया है। इनके अनुसार, उसने अच्छा मकान भी बना लिया लेकिन वह किसी अन्य को मिलने बुलाता नहीं हैः–

''सभी से ऊँचा, सभी से बढ़कर मकाँ बनाना तो देख लेना।
कहीं बचा है वो कोना जिसमें कोई तुम्हारे सिवा भी आए।।
ऊमस, अँधेरा, घुटन, उदासी, ये बन्द कमरों की खूबियाँ हैं।
खुली रखो गर ये खिड़कियाँ तो कहीं से ताजा हवा भी आए।।''[17]

भरे–पूरे और संयुक्त परिवार का अपना आनन्द है। जहाँ पहले संयुक्त परिवार में माता–पिता, दादा–दादी, के साथ अन्य संबंधियों का बहुत मान सम्मान हुआ करता था। उनका घर पर पूरा हक हुआ करता था, अब धीरे–धीरे वे अधिकारहीन होते जा रहे हैं। यहाँ तक कि कुछ परिवारों में दादा–दादी की तो बात छोड़ो, माता–पिता भी पराए हो गए हैं। घर एवं परिवार में आने वाले मेहमान भी कम हो गये हैं। स्वार्थ पर आधारित रिश्ते एवं संबंध भी धीरे–धीरे कमजोर होते जा रहे हैं। ऐसे में लोगों ने अपनी दुनिया में बाहरी लोगों का प्रवेश वर्जित कर दिया। इस त्रासदी को व्यक्त करती हुई 'रसूल अहमद' सागर की ग़ज़ल द्रष्टव्य हैः–

''द्वार पर लिखता है वर्जित है प्रवेश, उफ़।
सभ्य नर अब स्वागतम् लिखता नहीं है।''[18]

ग़ज़लकार तेजपाल सिंह 'तेज' मानते हैं कि जमाना काफी बदल गया है। आपसी प्यार–प्रेम कम होता जा रहा है। परन्तु सोचने वाली बात यह है कि क्या इसका कारण कोई दूसरा व्यक्ति है? 'तेज' के अनुसार आज हर रिश्ते पर स्वार्थ हावी हा गया है। असल में हम सब स्वार्थी हैं, परन्तु इसका दोष दूसरों पर डालना चाहते हैं। वे इस सत्य को स्वीकार करते हुए बहुत खूबसूरती से लिखते हैंः–

''मैं भी शातिर, तू भी शातिर,
ये सारी दुनिया भी है शातिर।
कैसे हो फिर मेल–मिलापा,
मैं भी शातिर, तू भी शातिर।
सब अपने खातिर जीते हैं,

ना तेरी ना मेरी खातिर।''[19]

बदलते दौर में सब रिश्ते बदल गए हैं, फिर चाहे वह भाई–बहिन का प्यार हो या अन्य कोई रिश्ता। आदमी में मानवीय मूल्यों का अभाव होता जा रहा है। ग़ज़लकार 'तेज' इस परिवर्तन को रेखांकित करते हुए लिखते हैंः–

''बदलते दौर में वो दिन वो रात कहाँ,
अब आदमी में आदमी–सी बात कहाँ।
कोई कैसे दे आशीष छोटी बहन को,
खून से लथपथ हैं खाली हाथ कहाँ।''[20]

रिश्तों में आापसी विश्वास कम होता जा रहा है। जहाँ रिश्तों को बचाने के लिए कशमें खानी पड़ें वहाँ रिश्ते बेमानी हो जाते हैं। आज आदमी रिश्ते निभाते–निभाते अन्दर से खोखला हो गया हैः–

''गैरों की तो बाते छोड़ो अपने भी हैं अपने कब,
करने को हासिल अपनापन कितनी खाऊँ कशमें मैं।
मेरे अन्दर मेरा अपना कुछ भी है अब शेष नहीं,
भीतर–भीतर इतना टूटा निभा–निभाकर रश्में मैं।
क्ब सोचा था खो जाऊँगा झुरमुट में तन्हाई में,
'तेज' बताऊँ अब किसको क्या, न घर में न बाहर मैं।''[21]

आधुनिकता, फैशन और खुलेपन ने भी रिश्ते–नातों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। नई पीढ़ी खुलेपन की समर्थक होती जा रही है। वह अपने ढ़ंग से जीना चाहती है। इस खुलेपन में वह संस्कार भूलती जा रही है। अब रिश्तों की परिभाषा बदल रही हैः–

''नए दौर में बंधन सारे टूट गये,
रिश्ते–नाते सभी पुराने टूट गये।
यूँ बरसी तहजीब जमाने में यारब,
रिश्ते–नाते सभी पुराने टूट गये।''[22]

रिश्तों में टूटन का कारण मियाँ बीवी की नासमझी भी है। आज हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को अपने अनुसार चलाने पर आमादा है। बदलते दौर में हर रिश्ते में बनावटीपन आ गया है फिर चाहे रिश्ता कोई भी हो। आमतौर पर आदमी अपनी पत्नी को सबसे नजदीक समझता है, परन्तु तेजपाल सिंह 'तेज' पति–पत्नी के बदलते रिश्तों को इस तरह व्यक्त करते हैंः–

''मियां ओर बीवी के रिश्ते, अब कहाँ रिश्ते रहे,
अब फकत मियां के वश में जी–हजूरी रह गई।''[23]

यथोक्त के आलोक में कहा जा सकता है कि हिन्दी ग़ज़लकारों ने घर–परिवार, रिश्ते–नातों बदलते दौर के प्रभाव का बहुत अच्छे से अध्ययन किया है। यह सर्वविदित सत्य है कि संयुक्त परिवार टूटने पर समाज की हानि ही हुई है। एकाकी परिवार में मनुष्य अकेलेपन, अजनबीपन, अस्तित्व बोध, स्वार्थ से ग्रस्त है, उसमें आपसी प्रेमभाव, स्नेह, सम्मान एवं आदर भाव की कमी हो गई है। हिन्दी ग़ज़लकारों ने संयुक्त परिवार के टूटने के दंश एवं बदलते पारिवारिक रिश्तों को उजागर किया है। इन ग़ज़लकारों मनुष्य को मानवीय जीवन मूल्य अपनाकर सपरिवार सुख, प्रेम स्नेह एवं आदरभाव से जीवन जीने की प्रेरणा दी है।
युगीन परिवेश का प्रभाव कमोबेश सभी पर पड़ता है। पहले जहाँ विभिन्न त्यौहारों और छुट्टियों में बच्चों में दादा–दादी, नाना–नानी के पास जाने की जैसी उत्सुकता होती थी, वैसी उत्सुकता आज देखने को नहीं मिलती। बच्चे जो संस्कार संयुक्त परिवार में रहकर सीखते थे, वे नहीं सीख पा रहे हैं, जिसका खामियाजा माता–पिता के साथ ही सम्पूर्ण समाज को भुगतना पड़ रहा है। हिन्दी ग़ज़ल संयुक्त में परिवार के टूटने से पड़ने वाले इन सभी प्रभावों का उल्लेख करना, समाज को सावचेत करना है। मेरा मत है कि हिन्दी ग़ज़ल इस उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतः सफल है।

सन्दर्भ

1. गौरी नाथ, हिन्दी की चुनिन्दा ग़ज़लें, अंतिका प्रकाशन, शालीमार गार्डन, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश–201005, प्र.सं. –2015, पृष्ठ संख्या–48
2. कमलेश्वर, हिन्दुस्तानी ग़ज़लें, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली–110006, संस्करण–2018, पृष्ठ संख्या–152
3. वही,पृष्ठ संख्या–152
4. दुष्यन्त कुमार, सायें में धुप, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पांचवीं आवृत्ति, 2013, पृष्ठ संख्या–35
5. गौरी नाथ, हिन्दी की चुनिन्दा ग़ज़लें, अंतिका प्रकाशन, शालीमार गार्डन, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश, प्र.सं.–2013, पृष्ठ संख्या–53
6. डॉ. सरदार मुजावर, हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.–2001, पृष्ठ संख्या–178
7. शेरजंग गर्ग, हिन्दी ग़ज़ल शतक, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2013, पृष्ठ संख्या–29
8. रवीन्द्र कालिया, हिन्दी की बेहतरीन ग़ज़लें, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, तीसरा संस्करण–2016, पृष्ठ संख्या–123
9. डॉ. दरवेश भारती,ग़ज़ल के बहाने (पत्रिका) पुष्प 07, अंक अगस्त 2010 अंशु प्रकाशन, दिल्ली–110007, पृष्ठ संख्या–17
10. डॉ. सरदार मुजावर, हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र.सं.–2001, पृष्ठ संख्या–155
11. कमलेश्वर, हिन्दुस्तानी ग़ज़लें, राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली–110006, संस्करण–2018, पृष्ठ संख्या–41
12. डॉ. दरवेश भारती,ग़ज़ल के बहाने (पत्रिका) पुष्प 05, अंक फरवरी 2010 अंशु प्रकाशन, दिल्ली–110007, पृष्ठ संख्या–21
13. ज्ञानप्रकाश विवेक,गुफ्तगु अवाम् से है, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.–2008, पृष्ठ संख्या–23
14. डॉ. सरदार मुजावर, हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.–2001, पृष्ठ संख्या–106
15. वही,पृष्ठ संख्या–153
16. शेरगंज गर्ग, हिन्दी ग़ज़ल शतक, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2013, पृष्ठ संख्या–73
17. रवीन्द्र कालिया, हिन्दी की बेहतरीन ग़ज़लें, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन लोदी रोड, नयी दिल्ली, तीसरा संस्करण–2016, पृष्ठ संख्या–81,
18. डॉ. सरदार मुजावर, हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.–2001, पृष्ठ संख्या–213
19. तेजपाल सिंह 'तेज', हादसों के दौर में', संगीता प्रकाशन, विश्वास नगर, शाहदरा, नई दिल्ली, 2012, पृ. सं. 26
20. तेजपाल सिंह 'तेज', दृष्टिकोण', विश्वास प्रकाशन, शाहदरा, नई दिल्ली, 2012, पृ. सं. 18
21. तेजपाल सिंह 'तेज', तूफाँ की जद में', मुरली प्रकाशन, उत्तम नगर, नई दिल्ली, 2015, पृ. सं. 47
22. तेजपाल सिंह 'तेज', दृष्टिकोण', विश्वास प्रकाशन, शाहदरा, नई दिल्ली, 2012, पृ. सं. 45
23. तेजपाल सिंह 'तेज', तूफाँ की जद में', मुरली प्रकाशन, उत्तम नगर, नई दिल्ली, 2015, पृ. सं. 25